IOSR Journal of Humanities and Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 31, Issue 7, Series 1 (July, 2026) 104-109
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

समकालीन भारत में पूना समझौता की प्रासंगिकता: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Arti

शोध सार:

24 सितंबर 1932 को महात्मा गाँधी और डॉ. भीमराव आम्बेडकर के बीच हुआ 'पूना समझौता' भारतीय लोकतंत्र की एक ऐतिहासिक घटना है। इस समझौता से दलित समाज के लिए 'पृथक निर्वाचन' की जगह 'संयुक्त निर्वाचन' और आरक्षित सीटों का प्रावधान किया गया, जिससे राजनीति में उनकी हिस्सेदारी का रास्ता खुला। वर्तमान दौर में भी यह समझौता उतना ही प्रासंगिक है, क्योंकि सामाजिक समानता, आरक्षण और वंचितों के अधिकार जैसे सवाल आज भी देश के केंद्र में हैं। यह सिर्फ एक राजनीतिक दस्तावेज़ नहीं था, बल्कि दलित और वंचित समाज को मुख्यधारा से जोड़ने का आधार था। यह इतिहास का वो खूबसूरत उदाहरण है जो सिखाता है कि गहरे मतभेदों को भी बातचीत, समझदारी और संवैधानिक मूल्यों से सुलझाया जा सकता है।

बीज शब्द (Keywords): *पूना समझौता, संयुक्त निर्वाचन, सामाजिक न्याय, दलित प्रतिनिधित्व, आरक्षण।*

प्रस्तावना :

भारतीय समाज जितना पुराना और गौरवशाली है, वक्त के साथ इसमें उतनी ही सामाजिक विसंगतियाँ भी आती गईं। कई बाहरी आक्रमणों और ऐतिहासिक उथल-पुथल के बीच हमारे समाज में 'जाति व्यवस्था' जैसी एक दमनकारी कुरीति ने जन्म ले लिया। इस व्यवस्था ने सदियों तक एक बहुत बड़े वर्ग को बुनियादी इंसानी अधिकारों से वंचित रखा।

ब्रिटिश शासन के दौरान जब इस वर्ग को सेना में भर्ती होने का मौका मिला, तो उनके जीवन में थोड़ा सुधार आया, लेकिन 1892 में अंग्रेजों ने इस भर्ती पर भी रोक लगा दी। आगे चलकर 19वीं और 20वीं शताब्दी के सुधार आंदोलनों और आज़ादी की लड़ाई ने देश में एक नई चेतना फूंकी। इसका असर यह हुआ कि सदियों से शोषित इस समाज के भीतर भी अपने आत्मसम्मान और अधिकारों को लेकर एक नई जागृति पैदा हुई।

इसी दौर में 24 सितंबर 1932 को एक बेहद महत्वपूर्ण घटना घटी, जिसे 'पूना समझौता' कहा जाता है। इसकी पृष्ठभूमि तब बनी जब ब्रिटिश सरकार ने 'कम्यूनल अवार्ड' के तहत दलितों के लिए अलग चुनाव (पृथक निर्वाचन) की व्यवस्था की। महात्मा गाँधी इसके सख्त खिलाफ थे क्योंकि उन्हें डर था कि इससे हिंदू समाज हमेशा के लिए बंट जाएगा, इसलिए उन्होंने यरवदा जेल में आमरण अनशन शुरू कर दिया। दूसरी तरफ, डॉ. आम्बेडकर इसे दलितों की सुरक्षा का एक ज़रूरी कवच मानते थे।

देश के इन दो महान नेताओं के बीच उपजे इसी वैचारिक टकराव और लंबे संवाद से जो रास्ता निकला, वही पूना समझौता था। इसके तहत 'संयुक्त निर्वाचन' को अपनाया गया और बदले में दलितों के लिए आरक्षित सीटें बढ़ा दी गईं। आज के बदलते भारत में, जब भी सामाजिक न्याय और समानता की बात होती है, पूना समझौता को नए नज़रिए से समझना और भी ज़रूरी हो जाता है। यह शोध पत्र इसी का एक निष्पक्ष विश्लेषण करता है। इस शोध पत्र में द्वितीय स्त्रोत की मदद से गुणात्मक शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है

कम्यूनल अवार्ड :

20वीं सदी की शुरुआत भारत के लिए उथल-पुथल भरी थी। तो दूसरी तरफ संविधान बनाने की प्रक्रिया अभी चल रही थी उसी समय डॉ. भीमराव आम्बेडकर ने दलितों के अधिकारों को देश की मुख्यधारा की राजनीति के केंद्र में ला खड़ा किया। जब ब्रिटिश सरकार ने भारत के भविष्य के लिए लंदन में '**गोलमेज सम्मेलन**' बुलाए, तो डॉ. आम्बेडकर ने दलितों के लिए '**पृथक राजनीतिक प्रतिनिधित्व**' की पुरज़ोर मांग की।

शिमला प्रतिनिधिमंडल और मार्ले-मिंटो सुधार (1909) :

इस बदलते राजनीतिक माहौल में, बहुसंख्यक हिंदुओं के बीच अपने भविष्य को लेकर मुस्लिम नेताओं में एक डर था। इसी सिलसिले में 1906 में आगा खां के नेतृत्व में एक प्रतिनिधिमंडल वायसराय लॉर्ड मिंटो से शिमला में मिला (जिसे **शिमला प्रतिनिधिमंडल** कहा गया)। उन्होंने मुसलमानों के लिए एक अलग पहचान और 'पृथक निर्वाचन मंडल' की मांग की। इसी का नतीजा था '**मार्ले-मिंटो सुधार (1909)**', जिसने पहली बार धर्म के आधार पर मुसलमानों को पृथक निर्वाचन का अधिकार दे दिया। इसने भारतीय राजनीति में विभाजन के बीज बो दिए, जिसके बाद बाकी अल्पसंख्यक समुदाय भी ऐसी ही मांग करने लगे। आगे चलकर **1919 के मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों** में इसका दायरा बढ़ाकर सिखों, ईसाइयों और एंग्लो-इंडियनों को भी इसमें शामिल कर लिया गया।

साउथबोरो समिति (1919) और डॉ. आम्बेडकर का पक्ष :

1919 के सुधारों के तहत वोट देने के अधिकार और चुनाव व्यवस्था का खाका तैयार करने के लिए '**साउथबोरो समिति**' **(मताधिकार समिति)** बनाई गई। इस समिति के सामने डॉ. आम्बेडकर ने दलितों के अधिकारों के लिए एक ऐतिहासिक प्रतिवेदन पेश किया।

उसी दौरान कांग्रेस ने दलितों के समर्थन में एक प्रस्ताव पास किया था, लेकिन डॉ. आम्बेडकर ने इसे "खोखला और राजनीतिक स्वार्थ से प्रेरित" बताया। उन्होंने 'द टाइम्स ऑफ इंडिया' को लिखे एक पत्र में बेबाकी से कहा था:

"स्वराज पर केवल ऊँची जातियों का हक नहीं है, वह दलितों का भी उतना ही जन्मसिद्ध अधिकार है। जब तक उच्च वर्ग शोषितों को आगे बढ़ाने का अपना नैतिक कर्तव्य नहीं निभाएगा, आज़ादी बहुत दूर रहेगी।"

जब साउथबोरो समिति ने सिर्फ संपत्ति और शिक्षा के आधार पर अमीर वर्ग को वोट का अधिकार दिया और दलितों-गरीबों को छोड़ दिया, तो डॉ. आम्बेडकर ने समिति से मिलकर '**साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व**' का पुरज़ोर समर्थन किया। उनका मानना था कि अछूतों का दर्द सिर्फ एक अछूत प्रतिनिधि ही समझ सकता है। हालांकि, सवर्णों के विरोध के कारण समिति ने प्रांतीय विधानसभाओं की 800 सीटों में से दलितों को महज़ 7 सीटें ही दीं, जिसका भारी विरोध हुआ। बाद में सरकार को झुकना पड़ा और सीटों में थोड़ा सुधार किया गया।

साइमन कमीशन (1928) और दलितों की मांगें :

साल 1928 में जब '**साइमन कमीशन**' भारत आया, तो पूरे देश में "साइमन गो बैक" के नारों के साथ इसका कड़ा विरोध हुआ क्योंकि इसमें कोई भारतीय सदस्य नहीं था। लेकिन डॉ. आम्बेडकर और दलित नेताओं ने इसे वंचितों के अधिकार सुरक्षित करने के एक मौके के रूप में देखा।

'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की ओर से डॉ. आम्बेडकर ने कमीशन को एक व्यापक ज्ञापन सौंपा। उन्होंने एक बेहद महत्वपूर्ण सिद्धांत सामने रखा कि:

"किसी भी समाज को आरक्षण या सुरक्षा देते समय केवल उसकी 'जनसंख्या' को नहीं, बल्कि उसकी 'सामाजिक स्थिति' और पिछड़ेपन को मुख्य आधार बनाया जाना चाहिए।"

23 अक्टूबर 1928 को पूना में सर जॉन साइमन से मिलकर डॉ. आम्बेडकर ने साफ कहा कि दलित, हिंदू समाज से बिल्कुल अलग एक स्वतंत्र अल्पसंख्यक समुदाय हैं, क्योंकि वे सामाजिक गुलामी और आर्थिक तंगी झेल रहे हैं। उन्होंने वयस्क मताधिकार के साथ आरक्षित सीटों का दावा किया और कहा कि अगर ऐसा नहीं हुआ, तो हमारी मांग 'पृथक निर्वाचक मंडल' की होगी। उन्होंने साइमन कमीशन के सामने मुख्य रूप से चार मांगें रखीं:

1. दलितों को अलग अल्पसंख्यक समुदाय का दर्जा मिले।
2. उन्हें राजनीतिक सुरक्षा दी जाए।
3. सरकारी नौकरियों में उचित प्रतिनिधित्व मिले।
4. दलित वर्ग के लिए पृथक निर्वाचन मंडल की व्यवस्था हो।

नेहरू रिपोर्ट (1928) और डॉ. आम्बेडकर का विरोध :

1928 में जब कांग्रेस और अन्य दलों ने मिलकर 'नेहरू रिपोर्ट' तैयार की, तो डॉ. आम्बेडकर इसके सख्त खिलाफ हो गए। उन्होंने अपने मराठी अखबार *'बहिष्कृत भारत'* में लिखा कि यह रिपोर्ट पक्षपात से भरी है।

उनका तर्क था कि रिपोर्ट में मुसलमानों को तो कई राजनीतिक रियायतें दी गईं, लेकिन दलितों और पिछड़े हिंदुओं को पूरी तरह अनदेखा कर दिया गया।

उन्हें लगा कि यह व्यवस्था केवल ऊँची जातियों के वर्चस्व को बचाने के लिए की गई है, क्योंकि अगर दलितों को हक मिलते तो समाज में बराबरी आती।

पहला गोलमेज सम्मेलन (1930) और 'स्वराज' की मांग

जब देश में कोई आम सहमति नहीं बनी, तो ब्रिटिश सरकार ने लंदन में **'गोलमेज सम्मेलन'** बुलाया। 20 नवंबर 1930 को डॉ. आम्बेडकर ने वहाँ सभी के सामने दलितों का पक्ष रखते हुए कहा कि शुरुआत में दलितों ने अंग्रेजों को अपना मुक्तिदाता माना था, लेकिन हकीकत यह है कि अंग्रेजी राज में भी छुआछूत वैसी ही रही। न मंदिरों के दरवाज़े खुले और ना ही पुलिस-सेना में नौकरियां मिलीं। ज़मीनी हालात आज भी बदतर हैं।

सबसे हैरान करने वाली बात यह थी कि दलित अधिकारों की बात करने से ठीक पहले डॉ. आम्बेडकर ने **'भारत की पूर्ण आज़ादी' (स्वराज)** की मांग की। यह उन विरोधियों को करारा जवाब था जो उन्हें अंग्रेजों का पिट्ठू कहते थे। कांग्रेस ने आज़ादी की मांग का तो समर्थन किया, लेकिन दलितों को विशेष राजनीतिक अधिकार देने से मना कर दिया क्योंकि वे इसे महज़ एक सामाजिक बुराई मानते थे, जबकि डॉ. आम्बेडकर इसे कानूनी और राजनीतिक अधिकार के रूप में सुरक्षित करना चाहते थे।

महात्मा गाँधी और डॉ. आम्बेडकर की पहली मुलाकात (1931) :

14 अगस्त 1931 को मुंबई के 'मणि भवन' में इन दो महान नेताओं की पहली मुलाकात हुई, जो वैचारिक मतभेदों से भरी थी।

महात्मा गांधी और डॉ. बी.आर. आम्बेडकर, दोनों का लक्ष्य एक ही था एक ऐसा समाज जहाँ छुआछूत और भेदभाव न हो, लेकिन उस मंज़िल तक पहुँचने के उनके रास्ते बिल्कुल अलग थे।

गांधी जी इसे हिंदू समाज पर लगा एक दाग मानते थे और उनका भरोसा लोगों की इंसानियत पर था वे मानते थे कि सवर्णों के 'हृदय-परिवर्तन' और आत्मशुद्धि से यह बुराई दूर हो जाएगी। इसीलिए उन्होंने दलितों को सम्मान

से "हरिजन" कहा। इसके उलट, डॉ. आम्बेडकर का नज़रिया कड़ा और व्यावहारिक था। वे जानते थे कि सिर्फ दया या नैतिकता से सदियों का शोषण खत्म नहीं होगा। उनका मानना था कि पूरी जाति व्यवस्था का 'समूल नाश' होना ज़रूरी है और असली बदलाव कानून, आधुनिक शिक्षा और राजनीतिक ताकत से ही आएगा, जिसके लिए उन्होंने "शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो" का मंत्र दिया।

यही वैचारिक टकराव 'पृथक निर्वाचन' को लेकर भी दिखा। गांधी जी को डर था कि अलग वोटिंग अधिकार मिलने से हिंदू समाज हमेशा के लिए टूट जाएगा, जबकि डॉ. बी.आर. आम्बेडकर का मानना था कि सदियों से कुचले गए समाज को मुख्यधारा में लाने और उन्हें असली हक दिलाने के लिए यह हक एक 'संजीवनी' की तरह अनिवार्य है। सीधे शब्दों में कहें, तो गांधी जी समाज का 'दिल' बदलना चाहते थे, और आम्बेडकर पूरा राजनीतिक परिदृश्य।

यरवदा जेल और कम्यूनल अवार्ड (1932) :

सितंबर 1931 में 'दूसरे गोलमेज सम्मेलन' के दौरान बहस और बढ़ गई। गाँधी जी ने साफ कह दिया कि वे दलितों के लिए किसी भी अलग प्रतिनिधित्व का अपनी पूरी ताकत से विरोध करेंगे, यहाँ तक कि इसके लिए अपने प्राणों की बाज़ी भी लगा देंगे।

इस गतिरोध के बीच, ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैम्जे मैक्डोनाल्ड ने 17 अगस्त 1932 को **'कम्यूनल अवार्ड'** की घोषणा कर दी। इसमें दलितों को दो बड़े अधिकार मिले:

1. प्रांतीय विधानसभाओं में सीटों का निश्चित कोटा (पृथक निर्वाचन मंडल के साथ)।
2. **दोहरे मतदान का अधिकार** (यानी वे अपने प्रतिनिधि को भी चुन सकते थे और सामान्य सीट पर भी वोट दे सकते थे)।

इसके तहत देश की प्रांतीय विधानसभाओं की कुल **843 सामान्य सीटों में से दलितों को 71 सीटें** दी गईं (जैसे बम्बई में 18, यूपी में 12, मद्रास में 10 आदि)।

डॉ. आम्बेडकर इस संख्या से पूरी तरह खुश नहीं थे, क्योंकि आबादी के हिसाब से यह महज़ 5% सीटें थीं (जबकि मांग 17% की थी)। इसके बावजूद, वे इसे एक **"अनमोल विशेषाधिकार"** मानते थे, क्योंकि अब सवर्ण उम्मीदवारों को भी जीतने के लिए दलित वोटरों के सामने आना ही पड़ता, जिससे दलितों की राजनीतिक ताकत बढ़ जाती।

पूना समझौता :

जब ब्रिटिश सरकार ने दलितों के लिए 'पृथक निर्वाचन' का प्रावधान किया, तो महात्मा गांधी इसके खिलाफ यरवदा जेल में आमरण अनशन पर बैठ गए। अब डॉ. बी.आर. आम्बेडकर के सामने एक बहुत बड़ा धर्मसंकट खड़ा हो गया–एक तरफ उनके अपने समाज के हक और सदियों की लड़ाई थी, तो दूसरी तरफ गांधी जी की ज़िंदगी। आखिरकार, डॉ. आम्बेडकर ने अपनी गहरी दूरदर्शिता दिखाई और देश व मानवता के हित में समझौता करने का एक ऐतिहासिक फैसला लिया।

इस समझौते के बाद भले ही अलग चुनाव की मांग छोड़नी पड़ी, लेकिन इसके बदले दलितों के लिए आरक्षित सीटें दोगुनी से भी ज़्यादा हो गईं यानी पहले की 71 सीटों से बढ़कर 148 (बाद में 151) कर दी गईं (जैसे मद्रास और बंगाल में 30-30, यूपी और मध्य प्रांत में 20-20 सीटें दी गईं)। साथ ही, केंद्र में भी 18% सीटें आरक्षित की गईं। नियम यह बना कि आरक्षित सीट पर चुनाव लड़ने के लिए पहले दलित समाज अपने चार उम्मीदवार खुद चुनेगा (प्राइमरी इलेक्शन), और फिर उस इलाके के सभी मतदाता मिलकर अंतिम विजेता तय करेंगे। इसके अलावा, सरकारी नौकरियों में भेदभाव खत्म करने, दलित बच्चों की पढ़ाई के लिए विशेष बजट देने और इस व्यवस्था को शुरुआत में 10 साल के लिए लागू करने की बात भी तय हुई।

समकालीन भारत में प्रासंगिकता और निष्कर्ष :

पूना समझौता सिर्फ दो नेताओं के बीच का समझौता नहीं था, बल्कि इसने भारत के 'समावेशी लोकतंत्र' की असली नींव रखी थी। इसका सीधा असर आज के भारत में साफ दिखाई देता है। आज अगर देश की लोकसभा में 543 सीटों में से 131 सीटें SC और ST वर्ग के लिए आरक्षित हैं, तो उसकी जड़ें इसी ऐतिहासिक मोड़ से जुड़ी हैं। इसी सामाजिक न्याय की ताकत है कि श्री रामनाथ कोविंद देश के राष्ट्रपति बने और आज श्रीमती द्रौपदी मुर्मू भारत की पहली आदिवासी महिला राष्ट्रपति के रूप में देश के सर्वोच्च पद पर आसीन हैं। लेकिन, सिक्के का दूसरा पहलू भी है जिस पर आज भी बहस होती है। एक तरफ गांधी जी के समर्थकों का मानना है कि संयुक्त निर्वाचन ने हिंदू समाज को बिखरने से बचा लिया और दलितों को मुख्यधारा में जोड़े रखा। वहीं दूसरी तरफ, आम्बेडकर के समर्थकों का आज भी यह तर्क है कि संयुक्त चुनाव प्रणाली की वजह से दलित उम्मीदवार बड़े राजनीतिक दलों और सवर्ण वोट बैंक के दबाव में आ गए, जिससे वे अपने समाज की वह स्वतंत्र और बेबाक आवाज़ नहीं बन पाए जिसकी ज़रूरत थी।

निष्कर्ष स्वरूप पूना पैक्ट भारतीय लोकतंत्र का वह परिवर्तनीय बिंदु है, जो डॉ. आम्बेडकर के कड़े संघर्ष और महात्मा गांधी की सामाजिक एकता की चिंता, दोनों को एक साथ जोड़ता है। लेकिन आज के दौर में इस समझौते की मूल भावना को पूरी तरह सच करने के लिए सिर्फ राजनीतिक हिस्सेदारी देना ही काफी नहीं है। जब तक हम हाशिए पर मौजूद इस समाज को बेहतरीन शिक्षा, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने के मौके और आधुनिक तकनीकी कौशल नहीं देंगे, तब तक यह लड़ाई अधूरी है। सही मायनों में पूना समझौते की सार्थकता तभी बची रहेगी, जब हम अपने दिलों से जातिगत भेदभाव को मिटाकर व्यावहारिक रूप से एक-दूसरे को बराबरी का सम्मान देना शुरू करेंगे

संदर्भ सूची :

1. राम आहूजा, भारतीय समाज रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2001 पृष्ठ 13

2. एस. के. चहल, दलित पेटरनाईडस : द इंडियन नेशंस कांग्रेस एंड अंटॉचबलस ऑफ़ इंडिया, सुर्भी प्रकाशन, नई दिल्ली 2002, पृष्ठ 6

3. डॉ. डी. आर जाटव, राष्ट्रीय आंदोलन में डॉ आंबेडकर की भूमिका, समता साहित्य सदन राजस्थान,2010, पृष्ठ 97

4. राजीव अहीर, आधुनिक भारत का इतिहास, नई दिल्ली: स्पेक्ट्रम बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, 2023, पृष्ठ 357

5. डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर, रइटिंग्स एंड स्पीचेस , बसंत मून, बम्बई, खंड -9, पृष्ठ 325

6. बी. आर. आम्बेडकर, व्हाट कांग्रेस एंड गाँधी हैव डन टू द अंटॉचबलस, बम्बई, 1945, पृष्ठ 9

7. जेलेट, एलानर, कांग्रेस एण्ड द अनटचेबल्स (1917-1950), रिचर्ड सिसन, (कांग्रेस एण्ड इंडियन नेशनलिज्म) 1988,

8. कुलदीप चंद अग्निहोत्री, डॉ० भीमराव रामजी आम्बेडकर य़ात्रा के पदचिन्ह, नई दिल्ली वसंत कुंज पब्लिसर्स ,2018, पृष्ठ 15

9. एम.पी. मगुधर, डॉ० आंबेडकर एंड पार्लियामेंट डेमोक्रेसी, पूणे, 1976, पृष्ठ 28

10. डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर, राइटिंग्स एंड स्पीचेस, बसंत मून, बम्बई, खंड 9, पृष्ठ 323-328

11. विपिन चंद्र, आधुनिक भारत का इतिहास, हैदराबाद, ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, 2019, पृष्ठ 302

12. डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर, डॉ. आम्बेडकर साइमन कमीशन के साथ,सम्पूर्ण वांग्मय ,खंड 4, 2020, पृष्ठ 138-139

13. Babasaheb Dr. Bhimrao Ambedkar, writings and speeches, vol.2, page 429-430

14. डॉ० एम.एल. सहारे एवं डॉ० नलिनी अनिल, बाबा साहेब डॉ० आंबेडकर की संघर्ष यात्रा एवं सन्देश, नई दिल्ली, सम्यक प्रकाशन, पृष्ठ 127

15. डॉ० बाबासाहेब आंबेडकर: सम्पूर्ण वांग्मय, वसंत मून, खंड 16 बम्बई पृष्ठ 16

16. कुलदीप चंद अग्निहोत्री, डॉ० भीमराव रामजी आम्बेडकर य़ात्रा के पदचिन्ह, नई दिल्ली वसंत कुंज पब्लिसर्स,2018, पृष्ठ 25

17. डॉ0 एस.एस. नंदा,Indian government & politics, पब्लिसर्स बलवंत राय, 2009, पृष्ठ-45

18. सहारे, डॉ0 एम. एल एवं डॉ0 नलिनी अनिल (बाबा साहेब डॉ0 अम्बेडकर की संघर्ष यात्रा एवं संदेश) नई दिल्लीः सम्यक प्रकाशक, पृष्ठ 141

19. डॉ. भीम राव अम्बेडकर, डॉ. अम्बेडकर गोलमेज सम्मेलन में, सम्पूर्ण वाङ्मय, खंड-05, ग्यारवां संस्करणः 2020 अगस्त, नई दिल्लीः डॉ. आम्बेड़कर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय एवं आधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ 3

20. डॉ0 डी. आर. जाटव, डा. आम्बेड़कर व्यक्तित्व एवं कृतित्व, राजस्थानः समता साहित्य सदन, पृष्ठ 128

21. कीर, धनंजय (डॉ० बाबा साहेब आंबेडकर जीवन चरित) अनुवाद गजानन सुर्वे, पॉपुलर प्रकाशन, पृष्ठ 171

22. वही, पृष्ठ 172

23. आंबेडकर, डॉ० बाबासाहेब (डॉ० आंबेडकर गोलमेज सम्मलेन में) सम्पूर्णवांग्मय, खंड-5, 2020, पृष्ठ 130

24. कीर धनंजय, वही पृष्ठ 176

25. कीर धनंजय, वही पृष्ठ 173

26. कुलदीप चंद अग्निहोत्री, डॉ० भीमराव रामजी आम्बेडकर य़ात्रा के पदचिन्ह, नई दिल्ली वसंत कुंज पब्लिसर्स,2018, पृष्ठ 29

27. कुलदीप चंद अग्निहोत्री, डॉ० भीमराव रामजी आम्बेडकर य़ात्रा के पदचिन्ह, नई दिल्ली वसंत कुंज पब्लिसर्स, 2018, पृष्ठ 30

28. धनंजय कीर, सुर्वे गजानन अनुवाद, बाबा साहेब डॉ0 अम्बेडकरः जीवन चरित, तृतीय संस्करणः 2018 मुम्बईः पाप्युलर प्रकाशन, पृष्ठ 194

29. द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ महात्मा गाँधी, सम्पूर्ण बंगमय, खंड-51, पृष्ठ-487